Impact Factor : 1.021 Peer-Reviewed Journal ISSN : 2278 – 5639
Global Online Electronic International Interdisciplinary Research Journal (GOEIIRJ)
{{Bi-Monthly}} Volume – IV, Issue – I June 2015

स्त्री अस्मिता का प्रश्न: स्वरूप एवं संकल्पनाएँ

डॉ. सीमा जाधव,
सहायक प्राध्यापक,
आर.एन.सी आर्टस,जे.डी.बी कॉमर्स अँड एन.एस.सी. सायन्स कॉलेज,
नासिक रोड – ४२२१०१.

भारतीय नवजागरण की मूल समस्या नारी अस्मिता थी । भारतेंदु के शब्द में -'' स्वत्व निज भारत गहै', यह स्वत्व वही था । जिसे आज के परिप्रेक्ष्य में अस्मिता कहा जाता है ।'' [१] जिस प्रकार राजनीतिक स्वाधीनता इस स्वत्व प्राप्ति की पहली शर्त थीं उसी प्रकार नारी की जागरूकता में अस्तित्व की स्वाधीनता ही उसकी अस्मिता की तलाश की सफलता है । उसकी स्वयं के प्रति जागरूकता ही उसे मुक्ति के मार्ग के प्रति अग्रसर करती हुई प्रतीत होती हैं । स्वत्व की रक्षा के लिए नारी इतनी सजग है कि अब वह पुरुषों के अधीन अपने निर्णयों का स्वीकार करके नहीं चलती । उसका संघर्ष पुरुषों की सड़ी गली मानसिकता और समाज के बीच उनको मानसिक गुलामी के प्रति था । इसीलिए स्त्री-विशेष के स्वत्व की रक्षा का प्रश्न अब उनकी अस्मिता की रक्षा का प्रश्न बन गया है ।

कहने का तात्पर्य है कि नारी अस्मिता से जुड़े विभिन्न संदर्भों में स्त्री की आइडेंटिट ही उसका मुख्य उद्देश्य है । उसकी आइडेंटिट ही उसके 'स्व' की खोज है और उस खोज का परिणाम अंत: आज की नारी की पुनर्निर्मित रुप है । ''आज का भारतीय साहित्य विश्व युद्ध के बाद हुए पारिवारिक, सामाजिक विघटन, औद्योगिक काल की अत्यधिक समृद्धि से अभिशप्त पश्चिमी समाज के सम्मुख आयी चुनौतियों का ही परिणाम हैं ।'' [२] जिसके परिणाम स्वरुप आज नारियाँ ''आत्मा की तलाश, अस्मिता की तलाश, जन समूह की आकांक्षा, अभिलाषा परंपराएँ अपने सूक्ष्म वर्तमान में प्रवेश करती है और वर्तमान में से भविष्य तलाशती है ।'' [३]

आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से संपृक्त है । आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण ने भौगोलिक क्षेत्र के साथ साथ व्यक्ति को मानसिक रुप से भी निकटता प्रदान की है । युद्धों के परिणामस्वरुप तथा देश विभाजन एवं बंगाल के अकाल जैसी भीषण घटनाओं के फलस्वरुप समाज, परिवार और व्यक्ति में इतना परिवर्तन आया । ''विशेषत: नारी की स्थिति में...भाई अपनी बहनों से इतना प्यार नहीं करते जितना बहन अपने भाईयों से । हमारे यहाँ यह माना हुआ सत्य था । पर युद्ध की विभीषिका दिनों -दिन बढ़ती गयी, कीमतों और देश विभाजन के साथ लड़कियाँ भी नौकरी करने लगी, वे न तो आर्थिक रुप

से स्वावलंबिम्बनी हुई वरन् माता और छोटे भाई - बहनों की पालक भी बनी। घर में उनकी स्थिति अनायास ही बदल गई और बेरोजगार भाईयों के लिए कहीं कहीं उनका व्यवहार वैसा ही अपेक्षापूर्ण हो गया जैसे कभी पहले भाईयों का बहनों के प्रति होता था।''[४] इस स्थिति को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि उस दौर तक आते आते नारी का स्वाभाविक रुप से बदलना, तात्कालिक परिवेश की छटपटाहट हो सकता है या उसके प्रति नैराश्य भरा दृष्टिकोण। जो भी हो नारी का इस तरह परिवर्तित रुप उसे अपने अस्तित्व के प्रति सजग करता हुआ प्रतीत होता है।

विश्व की समस्त सभ्यताओं, संस्कृतियों की पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की हैसियत दोयम दर्जे की रही है। हिंदू धर्म में वह ढोर , गंवार, शुद्र व पशु के स्तर पर पायी जाती थीं। यद्यपि विश्व के सभी धर्मों में ईश्वर की कल्पना पुरुष के रुप में ही की गई है। विश्व के महान धर्मग्रंथ जिसने आगे-चलकर पीढ़ियों की आचार संहिता का नियमन एवं प्रणयन किया, वेद सभी पुरुष ग्रंथकारों द्वारा रचित ही पाए गए। महान पुरुष जो युगावतार कहे गये जिन्होंने स्वतंत्र धर्म का प्रर्वतन किया वे भी पुरुष ही रहे। स्त्री को देवी का दर्जा अवश्य दिया गया, पूज्य भी माना गया किंतु वह इतनी भी महान नहीं बनी कि ईश्वर या धर्म-प्रणेता पुरुष के समकक्ष बनी रहती, न ही वह दोयम दर्जे से प्रथम दर्जे पर पहुँची। स्वाभाविक था कि सभी धर्मशास्त्र एवं आचार संहिता, सारी व्यवस्थाओं- चाहे वह पारिवारिक हों या सामाजिक, आर्थिक हों या राजनैतिक का निर्माण पुरुष ने अपने हितों एवं वर्चस्व को ध्यान में रखकर किया। स्त्रियों को शिक्षा और संपत्ति के हक तथा सामाजिक हैसियत से वंचित कर दिया। साथ ही उसे विवाह, बच्चे तथा परिवार के दायित्व से इस तरह बांध दिया कि उसे स्वतंत्रता के विर्सजन तथा आत्मसमर्पण के साथ - साथ अपनी समस्त ऊर्जा का प्रयोग दूसरों के हेतु करने की शर्त पर ही सम्मान हासिल हो सकता है। धर्म ने स्त्री की नियति इस कदर तय की कि पतिव्रता, पति के परिवार को प्राथमिकता देने और अपने अतित को अपने से हमेशा के लिए काटकर विवाह की पवित्रता के साथ नीति-तत्व एवं यौन -शुचिता बनाए रखने की अनिवार्यता सुनिश्चित कर स्त्री की अस्मिता, स्वायत्ता तथा संबंधों की स्वधीनता पर अंकुश लगा दिया

संयुक्त परिवार टूटने के कारण आज की स्त्रियॉं अपनी आर्थिक जरुरतों को पूरा करने के लिए घर की दहलीज लांघकर बाहर निकली। इसी अधिक स्वतंत्रता के कारण स्त्री अपेक्षाकृत बेहतर स्थितियों पर पहुँची। साथ ही आधुनिक शिक्षा ने जागरुकता दी और अपने चतुर्दिक फैले अंधकार को दूर करने की जिद्दोजहद भी थीं। स्त्री के जगने से पहले ही उसकी नियति पुरुष की लेखनी से लिखी जा चुकी थी।

उसे मिटाने का साहस भी उसने संजोया। स्त्री ने अपने में आत्मविश्वास भरा। थके हारे मन में शक्ति की संजीवनी पाकर स्त्री ने सारी ही परिस्थितियों व धर्म की नैतिकता की चुनौतियों के रुप में स्वीकार किया। अठारहरवीं सदी में फ्रांस की क्रांति के बाद मानव मात्र की बराबरी की आवाज उठी। तब स्त्री -पुरुष की समकक्षता के स्वर भी मुखर हुए।

स्त्री मुक्ति के रास्ते की तरफ संकेत करते हुए मुद्राराक्षस ने लिखा है - "स्त्री मुक्ति के सवाल को हल कर सकती है। स्त्री के भविष्य की परिकल्पना स्त्री ही बेहतर कर सकती है। इसके लिए ईश्वर, धर्म, परिवार और विवाह के जाल को भेदना होगा।"[९]

जब हम स्त्री अस्मिता की बात करते हैं तो सबसे जरुरी है कि पहले पुरुष स्वयं पितृसत्तात्मक संस्कारों से मुक्त हो, क्योंकि स्वामी पालिता का भाव आते ही स्त्री एक पालतु पशु या उपभोग्य वस्तु में परिवर्तित हो जाती है। प्रथमत: हमें इस पूर्वाग्रह से मुक्त होना आवश्यक होगा कि पुरुष स्त्री से श्रेष्ठ है। साथ ही समस्त विमर्शों, बहसों, मुददों का मूल उदेदश्य एवं प्रयासों से यही सिद्ध न करे की स्त्री ही सर्वश्रेष्ठ है। वे दोनों समान, सहयोगी एवं परस्पर पूरक होने चाहिए। उनमें एक दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने की भूमिका नहीं होनी चाहिए बल्कि उत्तरोतर श्रेष्ठ और उत्कृष्ट बनने की प्रक्रिया होनी चाहिए।

अर्थात् तात्पर्य हैं कि इन सबके लिए सर्वप्रथम चिंतन में बदलाव एवं पुरुष मानसिकता वाली स्त्रियों की भी पितृसत्तात्मक संस्कारों से मुक्त होना चाहिए। स्त्री की मुक्ति से पहले पुरुष मानसिकता से मुक्ति आवश्यक है। समाज में प्रभुतासंपन्न तत्वों की मानसिकता में बदलाव तभी संभव है जब नारी स्वयं चेतना संपन्न हो अथवा अपने ऊपर होने वाले अत्याचार, उत्पीड़न व अन्याय शोषण के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक भाव रखती हो। सामंती वैचारिकता में नारी मुक्ति का कोई आधार नहीं था। किंतु बदलती सामाजिक व्यवस्थाओ में स्त्री की लड़ाई व विरोध का सामुदायिक- वैचारिक आधार बन गया। मानवाधिकार की बढ़ती चेतना ने मानवीय अस्मिता की ओर और अधिक ध्यान आकृष्ट किया। "सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों में नारी की सक्रिय भागीदारी ने न केवल उसके भय व संकोच को दूर किया बल्कि अपनी स्थिति के प्रति स्वतंत्र निर्णय क्षमता के विकास व विरोध के चिंतन को बढ़ावा दिया। अपने श्रमकार्य एवं उत्पादन की गुणवत्ता की समझ के साथ ही उसके मूल्य के प्रति भी उसका आग्रह बढ़ा है। यह पुरुष प्रधान समाज के सामंती संस्कारों के प्रति विद्रोहपरक होते हुए भी दयनीय और समझौता परक रहा है। उसने अपनी नैसर्गिक प्रवृत्तियों और संस्कारों के दबाव के कारण जहाँ दबे स्तर में

अधिकार की बात की वहाँ उत्पीड़न और उपेक्षा के बढ़ते दौर में अलग सामुदायिक संगठनों द्वारा भी अपने अस्तित्व की स्वतंत्र घोषणा की।"[६]

स्त्री की अस्मिता एवं संरक्षण के प्रश्न का पुरुषों ने विरोध किया है। वे उसे केवल भोग्या के रूप में देखते हैं। स्त्री को उपभोग्य वस्तु समझने के प्रति आज पुरुषों का अपना नजरियाँ बदलने की जरूरत है। इन मौलिक बदलावों के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए सीमोन-द-बोउवार ने अपनी किताब 'द-सेकेंड सेक्स' में कहा हैं कि - "स्त्री और पुरुष के बीच कुछ मौलिक आधारभूत भेद तो रहेंगे ही। उसका कामनात्मक जीवन उसकी संवेदनशीलता और उसकी सैक्सुअल दुनिया के स्वाद अलग हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि औरत का अपने शरीर और पुरुष तथा बच्चों से संबंध पुरुषोचित नहीं हो जाएगा। वह फिर भी स्त्रियोचित रहेगा किंतु उसकी संभावनाएँ सीमित नहीं अपरिमित रहेंगी।"[७]

साहित्य में निरंतर चला आ रहा स्त्री-विमर्श, महिला सशक्तिकरण एवं नारी अस्मिता का प्रश्न फैशन नहीं है। दरसअल यह परंपरा और आधुनिकता बोध का सतत चलनेवाला द्वंद्व है। स्त्री जब अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के निर्माण हेतु संघर्षरत होती है तो उसमें चेतन मन की संकल्पनात्मक भूमिका और अवचेतन मन की इच्छा शक्ति होती है। सदियों से चली आ रही अव्यवस्थित एक परंपरा व सुदृढ़ व्यवस्था को तोड़ना उसकी नियति बन रही है। साथ ही इस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करने से उसे जन संघर्ष से जुड़ना तथा पग-पग पर यर्थाथ के थपेड़े खाना ही उसकी अस्मिता की पहचान बन गयी है।

इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव के वक्तव्य का महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है -" नैतिकता, मर्यादा, धर्म, संस्कृति, परंपरा सहित समाज के सारे मानक स्त्री देह से तय होते हैं। स्त्री के विरुद्ध साजिश में धर्म और मर्यादा के नाम पर उसकी देह कुचली जाती हैं । जब भी धर्म, आस्था और व्यक्ति, राज्य और व्यक्ति तथा परिवार और यौन संबंधों को बदलने की विद्रोही कोशिशें होती है तब बाधाओं के पहाड़ खड़े कर दिये जाते हैं। हमें अश्लील और अनैतिक करार दिया जाता है। धर्म, सत्ता एवं परिवार की संरचना में जब कोई स्त्री साहित्य के माध्यम से हस्तक्षेप करती है तब उस पर किसी न किसी बहाने से आपात्तियाँ उठने लगती हैं। उसकी भाषा को अश्लील बताया जाता है। कई बार उस पर व्यक्तिगत रूप से लांछन लगाया जाता हैं, वही पितृसत्तात्मक समाज या ब्राह्मणवादी व्यवस्था की पहचान है।"[८]

स्त्री के लिए देह केवल वस्तु नहीं है उसकी अस्मिता का एक हिस्सा है। उसे यौनिक रूप से गुलाम बनाने वाले पुरुष कभी नहीं चाहेंगे की स्त्री की देह में सोई हुई इच्छाएँ उसकी मर्जी से सोयें या

जागे। इसीलिए जब स्वतंत्रता की बात उठती है तो स्त्री सबसे पहले अपने देह पर अपना अधिकार देखना चाहती है । यह कहा जा सकता है कि पीड़ा जहाँ सबसे अधिक होती है, सबसे पहले वहीं ध्यान जाता है। " नैतिकता का चाहे कितना ही अंकुश हो, नारी का विद्रोह उसकी देह से शुरू होगा। बेड़ी वही से टूटती हैं, जहाँ सबसे अधिक रगड़ रही होती हैं।"[९]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि देह मुक्ति स्त्री की अस्मिता का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। स्त्री को चयन का अधिकार मिले तभी उसकी अस्मिता कायम रह सकती है। नारी के अधिकार का प्रश्न केवल नारी का नहीं हैं, वरन संपूर्ण मानवता का प्रश्न है। पुरुष से अलग रहकर संसार बसाने की कल्पना नारी नहीं करती हैं। ठीक उसी तरह समाज को भी स्त्री को अपनी मुठ्ठी में कैद करने की महत्त्वकांक्षा को मुक्ति देनी है। इसी वैचारिक पष्ठभूमि पर ही स्त्री अस्मिता का एक ठोस स्वरूप गढ़ने में स्त्री विमर्श को सहायता मिलेगी।

संदर्भ :

१ आलोचना अक्तूबर- दिसंबर १९८६ पृ. ३
२ मधुमती जून- जूलाई १९९२ पृ.३
३ मधुमती जून -जूलाई १९९२ पृ.१२
४ नयी कहानी : एक सर्वेक्षण, उपेन्द्रनाथ अश्क पृ. ५०
५ कथाक्रम, जनवरी २००० पृ.१५
६ समय माजरा, मार्च २००१ पृ. २०
७ द सेकेंड सेक्स : सीमोन- द - बोउवार पृ.१०
८ हंस, अगस्त पृ.२५
९ औरत:अस्तित्व और अस्मिता: अरविंद जैन
१० आधुनिक हिंदी साहित्य : ब्रम्हस्वरूप शर्मा